न डरिये न अशान्त हूजिये

हम अशान्त और आतंकित न हों

कितना ही प्रयत्न करने पर भी, कितनी ही सावधानी बरतने पर भी ऐसा सम्भव नहीं कि मनुष्य के जीवन में अप्रिय परिस्थितियाँ प्रस्तुत न हों। यहाँ सीधा और सरल जीवन किसी का भी नहीं है। अपनी तरफ से मनुष्य शान्त, सन्तोषी और संयमी रहे, किसी से कुछ भी न कहे, कुछ न चाहे, तो भी दूसरे लोग उसे शान्तिपूर्वक समय काट ही लेने देंगे इसका कोई निश्चय नहीं। कई बार तो सीधे और सरल व्यक्तियों से अधिक लाभ उठाने के लिये दुष्ट, दुर्जनों की लालसा और भी तीव्र हो उठती है। कठिन प्रतिरोध की सम्भावना न देखकर सरल व्यक्तियों को सताने में दुर्जन कुछ न कुछ लाभ ही सोचते हैं। सताने पर कुछ न कुछ वस्तुयें मिल जाती हैं और दूसरों को आतंकित करने, डराने का एक उदाहरण उनके हाथ लग जाता है।

हम सब के शरीर अब जैसे कुछ बन गये हैं उनमें पग-पग पर कोई बीमारी उठ खड़ी होने की आशंका रहती है। प्रकृति का सन्तुलन एटमबमों के परीक्षणों से, वृक्ष वनस्पतियों के नष्ट हो जाने से, कारखानों के धुएँ से हवा गन्दी होते रहने से, बिगड़ता चला जा रहा है उसके कारण दैवी विपत्ति की तरह कई बार बीमारियाँ फूट पड़ती हैं और संयमी लोग भी अपना स्वास्थ्य खो बैठते हैं। खाद्य पदार्थों का अशुद्ध स्वरूप में प्राप्त होना, उनमें पोषक तत्त्व घटते जाना, आहार-विहार की अप्राकृतिक परम्परा के साथ घसीटते चलने की विवशता आदि कितने ही कारण ऐसे हैं जो संयमी लोगों को भी बीमारी की ओर घसीट ले जाते हैं।

कौन ऐसा है जिसे प्रियजनों की मृत्यु का शोक सहन नहीं करना

पड़ता ? इस नाशवान् दुनियां में सभी तो मरण धर्मा होकर जन्मे हैं। मरघटों को चितायें सुलगती ही रहती हैं। जन्म की भांति मृत्यु भी इस संसार की एक सुनिश्चित सचाई है अपने घर के, अपने परिवार के, अपने प्रिय समाज के, कोई न कोई स्वजन, स्नेही मरते ही और मरने पर शोक-सन्ताप होता ही। माताओं को अपनी गोदी के खेलते हुए प्राणप्रिय बच्चों का शोक सहना पड़ता है। पत्नियां अपने जीवनाधार पतियों को अर्थी पर कसा जाता देखती हैं, मित्र, मित्र से बिछुड़ते हैं। भाई बहिन, साले बहनोई, दामाद, पिता-माता, बेटे-पोते, आगे-पीछे समय-असमय मरते ही रहते हैं। जिनके ऊपर बीतती है वे उसे वज्र-पात जैसा समझते हैं बाकी लोग उसे एक बहुत छोटी-सी नगण्य घटना, क्षणिक कौतूहल मात्र मानकर दिखावटी सहानुभूति प्रकट करते हुए, उपेक्षा करते रहते हैं। यह क्रम संसार में अनादि काल से चला आ रहा है।

परिस्थितियां मनुष्य को स्थान परिवर्तन करने के लिये भी विवश करती रहती हैं। नौकरी वालों की बदली होती रहती है। व्यापार, शिक्षा या अन्य कार्यों के कारण पति-पत्नी को अलग-अलग रहना पड़ता है। हवा के झोंके में उड़ते हुए सूखे पत्तों की तरह परम स्नेही मनुष्य भी कई बार कहीं से कहीं चले जाते हैं और उनका विछोह कसकता रहता है। आर्थिक हानियों के अवसर बुद्धिमान के सामने भी आते रहते हैं। चतुर व्यापारी कई बार ऐसे उतार-चढ़ावों के बीच फंस जाते हैं कि उन्हें अपनी आजीविका और प्रतिष्ठा दोनों से ही हाथ धोना पड़ता है। दैवी प्रकोप से अतिवृष्टि, अनावृष्टि, दुर्भिक्ष, भूकम्प, बाढ़, अग्निकाण्ड, चोरी, डकैती, कमाऊ व्यक्ति की मृत्यु, प्रतिस्पर्धा, भावों की तेजी मन्दी, विश्वासघात, ठगी आदि कितने ही आकस्मिक कारण ऐसे हो सकते हैं जिनके कारण अनायास ही बहुत बड़ा आर्थिक आघात लगे और उसके फलस्वरूप भारी हानि उठानी पड़े, चलती हुई गाड़ी पटरी पर से उतर जाय और अप्रत्याशित परिस्थितियों का सामना करना पड़े।

परीक्षा की तैयारी में लगे हुए छात्रों में से ३५ प्रतिशत उत्तीर्ण और ६५ प्रतिशत अनुत्तीर्ण होते हैं। नौकरी के लिये खाली जगहों में एक स्थान के पीछे १०० अर्जी पहुँचती हैं। स्थान तो एक को मिलता है बाकी ९९ को तो

निराश रहना पड़ता है। कितने ही प्रेम—अभिनयों का दुःखद अन्त होता है। सुनहरे सपने परिस्थितियों की ठोकर खाकर चूर-चूर हो जाते हैं। इस प्रकार असफलता, निराशा, हानि, चिन्ता, प्रतिकूलता और परेशानी के अवसर हर मनुष्य के सामने छोटे या बड़े रूप में आते ही रहते हैं। इनसे पूर्णतया सुरक्षित रहना किसी के लिये भी सम्भव नहीं। इच्छा या अनिच्छा से प्रतिकूलताओं का सामना करना ही पड़ता है। रोकर या हँसकर उन्हीं को ही भुगतना पड़ता है।

मानसिक दृष्टि से दुर्बल और भावावेश में बहने वाले व्यक्ति इन छोटी-छोटी प्रतिकूलताओं में अपना सन्तुलन खो बैठते हैं और परेशानी में ऐसे बौखला जाते हैं कि उनका मस्तिष्क विक्षिप्त एवं उद्विग्न होकर ऐसी विपन्न स्थिति में जा पहुँचता है कि क्या करना, क्या न करना यह वे बिलकुल भी नहीं सोच पाते। ऐसी स्थिति में वे जो भी कदम उठाते हैं वह प्रायः गलत ही होता है। विक्षोभ की स्थिति में किये हुए निर्णय आमतौर से ऐसे होते हैं जिनसे विपत्ति से निकलने का मार्ग नहीं मिलता वरन् उलटे कठिनाइयों के और अधिक गहरे दलदल में फँस जाने का खतरा सामने आ खड़ा होता है। कई बार लोग घर छोड़कर भाग निकलने, आत्महत्या कर लेने, कपड़े रंगाकर बाबाजी हो जाने आदि की ऐसी गलतियाँ कर बैठते हैं जिन पर पीछे केवल पश्चात्ताप ही करना शेष रह जाता है। कई बार उद्विग्न लोग उनपर बरस पड़ते हैं जिन्हें वे अपनी प्रतिकूलता का कारण समझते हैं। गाली-गलौज मार-पीट, फौजदारी, कत्ल आदि की दुर्घटनायें प्रायः आवेश की स्थिति में ही की जाती हैं और पीछे इनकी प्रतिक्रिया में इतनी हानि उठानी पड़ती है जो उस कारण से भी अधिक मँहगी पड़ती है जिसके लिये यह सब किया गया था।

कहते हैं कि "विपत्ति अकेली नहीं आती, वह अपने साथ और भी अनेकों मुसीबतें लिये आती है।" कारण स्पष्ट है कि प्रतिकूलता से घबराया हुआ मनुष्य यह सोच नहीं पाता कि अब उसे क्या करना चाहिये। साधारण सी कठिनाइयों से पार होने में ही काफी धैर्य, सूझ-बूझ और दूरदर्शिता की आवश्यकता पड़ती है, फिर कुछ अधिक परेशानी हो तब तो और भी

अधिक सही मानसिक सन्तुलन अभीष्ट होता है। यह न रहे तो विपत्तिग्रस्त मनुष्य किंकर्तव्य-विमूढ़ होकर प्रायः वह करने लगता है जो न करना चाहिये था। फलस्वरूप विपत्ति की कई शाखायें फूट पड़ती हैं और कठिनाई का नाम दौर आरम्भ हो जाता है। जब कभी ठण्डे मस्तिष्क से विचार करने का अवसर आता है तब मनुष्य पछताता है और सोचता है कि आगत विपत्ति नहीं टल सकती थी तो कोई बात न थी। अपने मानसिक सन्तुलन को तो विवेक द्वारा बचाया ही जा सकता था और जो परेशानियाँ अपनी भूलों के कारण सिर पर ओढ़ली गईं उनसे तो बचा ही जा सकता था।

घर में किसी की मृत्यु हो गई, एक प्रिय पात्र चला गया, उसके जाने से हानि भी हुई, धक्का भी लगा और शोक के कारण रुलाई भी आई। पर यदि लगातार रोते ही रहा जाय, भोजन त्याग दिया जाय, मूर्छित पड़े रहा जाय, उस शोक को ही स्मरण रखा जाय तो परिणाम एक ही होता है कि रहे सहे स्वास्थ्य का नाश और उस गड़बड़ी में साधारण कार्य क्रमों को नष्ट होने से दूनी विपत्ति का उद्भव। कमजोर आँखों वाले अधिक रोते रहें तो उनकी आँखों की रोशनी चली जाती है। दिल की धड़कन, ब्लड-प्रेशर, अनिद्रा, उन्माद, मूर्छा, अपच, उल्टी, सिरदर्द आदि अनेकों नये रोग उठ खड़े होते हैं। दूसरे लोग उस शोक-सन्ताप को समझाने-बुझाने या उसकी सहानुभूति में लगे रहते हैं और साधारण व्यवस्था को भूल जाते हैं तो दूसरी ओर से भी काम बिगड़ते हैं। दुधारू पशु समय पर न दुहे जाने, चारा-पानी ठीक प्रकार न मिलने से दूध देना बन्द कर देते हैं, बिना देखभाल के खेती या व्यापार खराब होता है। बच्चे परेशान होते हैं। चोरों की ऐसे ही मौके पर घात लगती है। दुश्मनों को हमले का मौका मिलता है। उस मृत्यु के कारण उत्पन्न हुए नये कामों और उत्तरदायित्वों के निबाहने के लिये जो महत्वपूर्ण हेर-फेर करने आवश्यक होते हैं वह भी नहीं सूझ पड़ते। इस प्रकार वह मृत्यु-शोक अपने साथ अनेकों नई विपत्तियाँ उत्पन्न करने वाला सिद्ध होता है।

यदि दूरदर्शिता के साथ यह सोच लिया गया होता कि घटित हुई घटना अब लौट नहीं सकती, क्या हुआ व्यक्ति आ नहीं सकता, अन्ततः शोक की

समाप्त करके साधारण क्रम अपनाना ही पड़ेगा, तो उस कार्य को बिना अधिक क्षति उठाये और बिना अधिक समय गँवाये ही पूरा क्यों न कर लिया जाय? इस प्रकार सोचने वाले अपना मन सँभालते हैं, धैर्य, विवेक, सन्तोष और दूरदर्शिता से काम लेते हैं। शोक घटाकर सन्तुलन ठीक करते हैं और स्वाभाविक जीवन की व्यवस्था जल्दी ही बना लेते हैं। ऐसे लोग मनोवांछक रूप में स्वयं उत्पन्न की गई विपत्ति से बच जाते हैं।

असफलता के समय दिल छोटा करने और निराश होने की क्या बात है। प्रथम प्रयास अवश्य ही सफल होना चाहिये यह कोई जरूरी नहीं। संसार में प्रयत्नशील व्यक्ति भी दो तिहाई असफलता और एक तिहाई सफलता का अनुमान लगाकर काम करते हैं। उसी पर सन्तोष करते और उतनी ही पर्याप्त भी मानते हैं। एक परीक्षा में एकबार फेल हो जाना कोई ऐसी स्थिति नहीं है जिसके लिये अत्यधिक चिन्तित और निराश हुआ जाय। एक बार फेल होने पर दो वर्ष की तैयारी में अच्छा सिंचोजन मिल सकता है और आगे की नींव पक्की हो सकती है। जिन्दगी इतनी लम्बी है कि उसमें दो-चार असफलताओं के लिए भी जगह रखनी पड़ती है।

हर काम में सदा सफलता ही मिलती रहे तब तो मनुष्य, मनुष्य न रह कर देवताओं की श्रेणी में गिना जाने लगे। यह सोचकर परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने वाले अपना साहस समेट कर रह सकते हैं और उस खिन्नता को भुलाकर दूने उत्साह से अगली तैयारी में लग सकते हैं। इस बार नौकरी न मिली, इस जगह पर नियुक्ति न हुई, तरक्की का अबकी बार अवसर न मिला तो आगे मिलेगा। इसमें अनुत्साह होने की कौन-सी बात है? उन्नति के लिये प्रयत्न करना चाहिये पर जो परिणाम सामने आये उसे सन्तोष और धैर्यपूर्वक हँसते, मुस्कराते हुए शिरोधार्य ही करना चाहिये।

आर्थिक घाटा जब गया तो हैरानी की क्या बात है? अपने पास यदि क्षमता, प्रतिभा, साहस, पुरुषार्थ और कौशल मौजूद है तो आज न सही चार दिन बाद फिर आवश्यक साधन जुट जायेंगे। न भी जुट पाए तो थोड़ा "(ओछी)" .... जीवन जिया जा

सकता है। गरीब लोग भी तो आनन्द और उल्लास की जिन्दगी जीते हैं फिर हम भी वैसा क्यों न कर सकेंगे ? खर्चों में कमी कर डालने से गरीबी अखरने वाली नहीं रहती। समय ने हमारी आमदनी पर कुल्हाड़ा चलाया तो हम अपने खर्चों में काट-छांटकर आसानी से उस सन्तुलन को पूरा कर सकते हैं। समय के अनुरूप अपने स्तर को घटा लेने का साहस जिसमें मौजूद है, जिसे हल्के दर्जे की मजदूरी में अपना गौरव नष्ट होते नहीं दीखता उसके लिये घाटे की स्थिति में भी परेशानी का कोई कारण नहीं।

परिस्थितियों के अनुरूप अपने को ढाल लेने का जीवन सिद्धान्त जिसने सीखा है उनके लिये अमीरी की तरह गरीबी में भी हँसने और प्रसन्न रहने का कारण मौजूद है। जिन्हें श्रम करने में शरम नहीं आती, जिनने प्रयत्न पुरुषार्थ, साहस और उल्लास को नहीं खोया है वे आजीविका का उपयुक्त मार्ग आज नहीं तो कल प्राप्त कर लेंगे। कल पंजाब में सब कुछ खोकर आये हुये और आज ठीक प्रकार जीवनयापन करने वाले शरणार्थी भाइयों का उदाहरण हमारे सामने है। अधीरता तो कायर का चिन्ह है। मुफ्त की मौज उड़ाने वाले हरामखोर हानि का रोना रोयें यह तो बात समझ में आती है पर जिनकी नसों में पुरुषार्थ मौजूद है वह तो जमीन में लात मारकर कहीं से भी पानी निकाल लेगा। वह क्यों निराश होगा, वह क्यों सिर धुनेगा ? लक्ष्मी पुरुषार्थ की चेरी है। जिसके पास पुरुषार्थ है उसको लक्ष्मी के चले जाने की चिन्ता क्यों करनी चाहिये ?

मतभेद के, लड़ाई झगड़े के कई कारण हो सकते हैं। ठण्डे मस्तिष्क से शान्त चित्त से विचार विनिमय करलें तो हम उनमें से कितनों को ही चुटकी बजाते सुलझा सकते हैं। उत्तेजित दिमाग तिल को ताड़ बना देता है और राई को पर्वत बनाता है। संदेह, अविश्वास और विक्षोभ से भरा हुआ मन दूसरों में अगणित प्रकार के दुर्भावों की कल्पना किया करता है। उन्हें दूसरे सभी दुष्ट, दुर्जन, द्वेष रखने वाले, स्वार्थी आक्रमणकारी दीखते रहते हैं। पर यदि चढ़े हुये दिमाग का पारा नीचे उतार लिया जाय तो लगेगा कि मतभेद के कारण बहुत ही छोटे थे। कुछ अपने को सुधारकर, कुछ उन्हें समझा-बुझाकर

ठीक रास्ता आसानी से निकल सकता है । समझौता करके मिल-जुलकर समन्वय और सहिष्णुता—की सह-अस्तित्व की नीति पर चलते हुए मतभेद रखने वाले लोगों के साथ भी गुजारा करने का रास्ता निकल सकता है ।

आवेश में और उत्तेजना में कहे हुए कोई कटु शब्द हमें भुला ही देने चाहिये । जूड़ी, सन्निपात में बक-झक करने वाले रोगी की बातें कौन स्मरण रखता है ? किसी नासमझी या गलत-फहमी के कारण यदि कभी कुछ कटु-वचन किसी ने कह दिया तो उसे स्मरण रखे रहने से कुछ लाभ नहीं । स्वाभाविक स्थिति प्रेम-सहयोग और सहिष्णुता की ही है । वही हमें अपने प्रियजनों के बीच बनाये रखनी चाहिये और यही नीति सम्बन्धित सर्वसाधारण के साथ बरतनी चाहिये । अपनी ओर से मीठे और सज्जनतापूर्वक वचन बोलते रहने और शिष्ट व्यवहार करते रहने से लड़ाई-झगड़े का बहुत-सा आधार अपने आप ही नष्ट हो जाता है ।

भविष्य की आशङ्काओं से चिन्तित और भयाक्रान्त कभी नहीं होना चाहिये । आज की अपेक्षा कल और भी अच्छी परिस्थितियों की आशा करना, यही वह सम्बल है जिसके आधार पर प्रगति के पथ पर मनुष्य सीधा चलता रह सकता है । जो निराश हो गया, जिसकी हिम्मत टूट गई, जिसका आशा का दीपक बुझ गया, जिसे अपना भविष्य अन्धकारमय दीखता रहता है, वह तो मृतक समान है । जिन्दगी उसके लिये भार बन जावेगी और वह काटे नहीं कटेगी । यह दुनियाँ कायरों और डरपोकों के लिये नहीं, साहसी और शूरवीरों के लिये बनी है । हमें साहसी और निर्भीक होकर ही इस संसार में जीना चाहिये ।

प्रतिकूलताओं से लड़ने का साहस रखना और जब वे सामने आ जावें तो हिम्मत वाले पहलवान के समान उनको परास्त करने के लिये जुट जाना यही बहादुरी का काम है । बहादुर को देखकर अधी विपत्ति अपने आप भाग जाती है । मनुष्य प्रयत्न करके प्रतिकूलताओं को निश्चय ही परास्त कर सकता है अन्धकार के बाद प्रकाश का आना जब निश्चित है तो विपत्ति ही सदा कैसे टिकी रह सकती है ? हम हिम्मत बाँधें तो ईश्वर की मदद जरूर मिलेगी ।

परमात्मा सदा से प्रयत्नशीलों की, साहसी, विवेकवान् और बहादुरों की सहायता करता रहा है फिर हमारी क्यों न करेगा ? शान्ति के बाद यदि अशान्ति की परिस्थिति आ धमकी तो परिवर्तन-चक्र हमें सदा थोड़े ही बना रहने देगा। अशान्ति के बाद शान्ति के क्षणों का, विपत्ति के बाद सम्पत्ति का आना भी उतना ही निश्चित है जितना रात के बाद दिन का आना है। फिर हमें निराशा क्यों हो। हम अशान्त और आतंकित क्यों हों ?

चिन्ता में डूबे रहने से क्या फायदा ?

चिन्ता एक विनाशक वृत्ति है, जो मनुष्य की शक्ति और समय का अनावश्यक मात्रा में अपव्यय करती रहती है। जिस शक्ति के द्वारा मनुष्य अपना स्वास्थ्य सुधार सकता था आजीविका कमा सकता था, विद्याध्ययन अथवा कोई उपयोगी कला सीख सकता था वह व्यर्थ ही बर्बाद हो जाती है। जितने समय को वह शारीरिक, मानसिक, आर्थिक अथवा किसी अन्य प्रयोजन में, विकास के काम में लगा सकता था, उसे छोटी-छोटी बातों की चिन्ताओं में ही गँवाता रहता है। मनुष्य-जीवन किसी महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिये मिलता है, इसे छोटी-छोटी बातों की चिन्ताओं में गँवा देना समझदारी की बात नहीं। अपने जीवन लक्ष्य को समझना और उसमें अन्त तक तत्परतापूर्वक लगे रहना तभी सम्भव हो सकता है जब चिन्ताओं से छुटकारा पायें, इनसे दूर रहें और इनसे क्षरित होने वाली शक्तियों को बचाकर अपनी निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति में लगायें।

चिन्ताओं से मनुष्य की रचनात्मक क्रियाशक्ति में थोड़ी कमी हो जाती अथवा थोड़ा समय ही बर्बाद होकर रह जाता तो भी विशेष हानि न थी। दैनिक कार्यों में चलने, उठने, बैठने और अन्य कोई ऐसे कार्य होते हैं जिनमें निष्प्रयोजन कुछ शक्ति भी लग जाती है कुछ समय भी। किन्तु उसकी हानि भी वहीं समाप्त हो जाती है। पर चिन्तायें अपने पीछे भी एक विनाशक वातावरण बना देती हैं जो मनुष्य की जीवन-शक्ति का चिरकाल तक शोषण करता रहता है। इनसे जितना ही बचाव किया जाता है ये शहद की मक्खी की तरह

उतना ही पीछा करतीं और अपने विषदंश चुभोती रहती हैं। मनुष्य चिन्ताओं के जाल में फँसकर अपनी मौत का ही सरंजाम जुटाता रहता है। जीवन-मृत्यु अकाल-मृत्यु की ओर तेजी से ले आने वाली यह चिन्तायें ही होती हैं। किसी कवि ने लिखा है—

चिन्ता चातुन ही परयो सो न चिता को शङ्क।
यह सोजै बूँदन जियत मुए जात या अङ्क॥

अर्थात् चिता तो मुरदा को जलाती है, किन्तु चिन्ता तो जीवित मनुष्य को तिल-तिल सुला कर मारती है।

चिन्ताओं से मस्तिष्क के अन्तराल में काम करने वाली सेल व फाइबर शक्तियों से किस प्रकार जीवन-शक्ति का तड़ित क्षरण होता है इसका पता जर्मनी के डाक्टरों ने एक प्रयोग से लगाया। किसी पूर्ण स्वस्थ व्यक्ति को अचानक चिन्ताजनक समाचार सुनाया गया। इससे घबड़ाकर वह उठने लगा तो उसे चक्कर आ गया और वह गिर गया। डाक्टरों ने शारीरिक परीक्षा के बाद देखा कि उसकी इतनी शक्ति एक ही झटके में समाप्त हो गई जिससे वह एक सप्ताह तक लगातार श्रम कर सकता था। चिन्तायें मस्तिष्क को उत्तेजित करती हैं जिससे शक्ति का बुरी तरह अपव्यय होता रहता है। इससे मनुष्य के सौन्दर्य, शारीरिक बल और ज्ञान का नाश होता रहता है।

चिन्ता जीवन की शत्रु है। शत्रु का काम होता है त्रास देना, भयभीत रखना और दाँव लगते ही आक्रमण करना। ठीक ऐसा ही काम चिन्तायें करती हैं। दिन-रात मनुष्य को घुलाती रहती हैं। रक्त, वीर्य, बल और बुद्धि का निरन्तर शोषण करती रहती हैं। व्यक्ति को निराश बना देती हैं। इससे मनुष्य सदैव डरा-डरा सा बना रहता है। कुछ दिन ऐसी स्थिति बनी रहने से चिड़चिड़ापन, यहाँ विक्षिप्तता तक की नौबत आ जाती है। स्थिति अधिक विकृत हो जाने पर मनुष्य के प्राण लेकर ही छोड़ती है। छोटी-सी बात को लेकर इतने बड़े दुष्परिणाम तक पहुँचने की बात कुछ अटपटी लगती है, किन्तु होता ऐसा ही है। यह स्थिति बड़ी खतरनाक होती है। इसका किसी चिकित्सक के पास इलाज भी नहीं। इसका परिणाम अन्ततः काल मृत्यु ही होता है।

चिन्तायें आखिर आती क्यों हैं ? यह विचारणीय प्रश्न है। अधिक गहराई में जाकर देखें तो इनका आधार बड़ा ही टूटा-फूटा, सड़ा-गला-सा लगता है। चिन्तायें आती नहीं मनुष्य स्वयं उन्हें बुलाता है और अपने पास पालकर रखता है। चिन्ता का अर्थ है—किसी समस्या से हार मान लेना, अपने आप को पराजित घोषित कर देना। यह एक मनोविकार है जो मनुष्य की दुर्बलता प्रकट करता है। प्रस्तावित कठिनाई को अपनी शक्ति से बड़ी मान लेने के अतिरिक्त चिन्ताओं का और कोई भी अस्तित्व नहीं। खान-पान, रहन-सहन और सामाजिक व्यवहार की अनेकों चिन्तायें होती हैं, किन्तु इनके आधार इतने छोटे होते हैं कि उन्हें जानने से हँसी आती है। अपना पड़ोसी अच्छा खाता-पीता है। उसकी नौकरी भी अच्छी है। पर खुद का भोजन बड़ा रूखा-सूखा होता है। वेतन भी कम मिलता है। इन्हीं बातों को विवशतापूर्वक देखने का अर्थ है—चिन्ता। दूसरा अच्छा खाता है तो क्या हुआ, कितने ही तो ऐसे हैं जो बेचारे एक समय ही भोजन पाते हैं। आपको केवल सौ रुपये ही वेतन मिलता है। तो अनेक ऐसे हैं जो दिन भर कठोर श्रम करके भी शाम तक बारह आने कमा पाते हैं। तब फिर यह चिन्ता क्यों ? इससे यही पता चलता है कि चिन्ताओं का आधार उतना बड़ा नहीं होता जितना लोग उसे महत्व देकर मान लिया करते हैं।

चिन्ताओं के द्वारा अपनी कार्यक्षमता घटा देना, जीवन में घबराहट उत्पन्न करना अल्प-विकसित बुद्धि वालों का काम है। यह आत्म-विश्वास की कमी का द्योतक है। इन्हें बढ़ाओ नहीं, दूर करो। यह आपके शत्रु हैं। इनके कारण पूरे मन से अपने विकास-पथ पर आप अग्रसर न हो सकेंगे। अधूरे मन से कभी अपनी क्षमता को दोष देते रहें, कभी लक्ष्य प्राप्ति को बड़ा दुस्तर कार्य मानते रहें तो ये आपको गुलाम बना लेंगी। इससे सफलता की प्राप्ति में सन्देह ही बना रहेगा। आशावाद और कर्मठता को अपने जीवन में धारण करने से यह आसुरी चिन्तायें अपने आप लौट जायेंगी। इनसे हार मान लेने का अर्थ है—जीवन के प्रति वैराग्य। इसका परिणाम है—पतन की ओर उन्मुख होना, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। इसलिये अपने जीवन को सम्मुख बनायें

के लिए इन्हें सदैव दूर रखिये, अन्यथा ये असमय में ही खा जाने वाली शक्तियाँ हैं।

चिन्ताओं से बचाव का सबसे अच्छा साधन है—आध्यात्मिक धारणा। इस संसार में जो कुछ हो रहा है वह सब एक खेल मात्र है। किसी का अभिनय सुखद होता है, किसी का दुःखद। नाटक करने वाले अभिनेता यह जानते हैं कि यह सब स्टेज तक ही है। रङ्गमञ्च से नीचे आ जाने पर सब अपने पुराने रूप में आ जाते हैं। जीवन की विभिन्न क्रियाओं को भी इसी प्रकार देखना और मानना चाहिये यहाँ की प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील है, यहाँ का प्रत्येक पदार्थ नाशवान् है। इसलिये इनके परिणामों की आसक्ति से दूर रहना ही श्रेयस्कर है। इससे चिन्ताओं से अपने आप छुटकारा मिल जाता है। विशुद्ध कर्त्तव्य-भावना से यहाँ का प्रत्येक काम, क्रिया, व्यापार चलते रहना ही अच्छा है। समस्याओं से अपनी सामर्थ्य को छोटा मान लेना चिन्ता का कारण है। आप अपनी समस्याओं को संयोग या पार्ट मात्र मानिये। उन्हें निबटाइये तो सही किन्तु कठिनाइयों की चिन्ता न कीजिये तो ही जीवन लक्ष्य की ओर सफलता पूर्वक अग्रसर हो जाना सम्भव होगा। चिन्ताओं के चक्कर में ही पड़े रहे तो आपका विचार क्षेत्र भी संकुचित बना रहेगा। विचारों का दायरा न बढ़ा तो वह स्थिति कहाँ बन पड़ेगी जिसके लिये अमूल्य मानव-जीवन मिला है।

चिन्तायें जीवन-विकास में गतिरोध उत्पन्न करती हैं। मनुष्य की कार्य-क्षमता को पंगु बना देती हैं इससे मानसिक-विकास का मार्ग भी रुक जाता है। मनुष्य एक अपनी अलग दुनियाँ बना लेता है, इसे चिन्ताओं की दुनियाँ कहना ही उपयुक्त लगता है। जब तक जीवात्मा इस छोटे से चिन्ता-क्षेत्र में फँसा रहता है तब तक वह अपने शाश्वत स्वरूप को समझ नहीं पाती। लघु से महान् की आकांक्षा कोरी कल्पना मात्र बनी रहती है। सफलता का मूल मन्त्र एक ही है कि अपनी चिन्ताओं से छुटकारा पाइये। तभी वह स्थिति बन सकती है जब अपने जीवन की दिशा में भी कुछ प्रगति की जा सके।

चिन्ताओं से छुटकारे का मार्ग

जिन कारणों और अभावों से लोग दुःखी रहते हैं। उनके मूल तक जाय तो यह पता चलता है कि मनुष्य को किसी प्रकार का अभाव उतना दुःख नहीं देता जितना उसकी चिन्तित रहने की प्रवृत्ति दुःख देती है। किसी विषय को लेकर अकारण ही लोग उस पर आशंकापूर्ण कल्पनायें गढ़ते रहते हैं। अगले वर्ष बच्ची की शादी करनी है तो अभी से सोचने लगे कि दहेज के लिये रुपया कहाँ से आयेगा? गहने और कपड़ों का प्रबन्ध कैसे होगा? घर गिर रहा है, रिश्तेदार सम्बन्धी आयेंगे तो क्या कहेंगे? इसकी भी मरम्मत करवानी है, इधर नौकरी में भी तरक्की नहीं हो रही है, बच्चे की फीस के पैसे भी देने हैं आदि अनेकों प्रकार से वह एक ही विषय को लेकर सोच-सोच कर दुःखी रहता है। इस प्रकार चिन्ताओं में जलते रहना आज संक्रामक रोग-सा बन गया है।

चिन्ता एक प्रबल मनोव्याधि है। इसमें मानसिक शक्तियों का नाश होता है और शरीर पर दूषित प्रभाव पड़ता है। इससे लोगों का मानसिक व शारीरिक स्वास्थ्य गिर जाता है। "स्टाप वरीइङ्ग एण्ड गेट वेल" पुस्तक के विद्वान् लेखक डा० एडवर्ड पोडोलस्की ने अपनी पुस्तक में लिखा है—"चिन्ता से हृदय, रक्त का दबाव, गठिया, सर्दी, जुकाम तथा बहुमूत्र आदि रोग हो जाते हैं।" इस कारण इन रोगों से मुक्ति दिलाने वाले साधन प्रयोग में अवश्य लाने चाहिए।

डा० एलिक्सिस कैरेल का कथन है कि जो लोग चिन्ताओं से छुटकारे का मार्ग नहीं जानते वे जवानी में ही मर जाते हैं। चिन्ता वास्तव में एक ऐसा रोग है जो अन्दर ही अन्दर जलाता रहता है और सारे रक्त-मांस को जलाकर राख कर देता है। लोग समझते हैं कि उन्हें कोई शारीरिक व्याधि लग गई है किन्तु यह होता मानसिक चिन्ताओं के कारण ही है। इससे आत्म-शक्ति का नाश हो जाता है, स्वास्थ्य गिर जाता है और मौत को स्थिति बनते देर नहीं लगती। आत्म-विकास की सारी सम्भावनायें समाप्त हो जाती हैं।

जिन्हें इस जीवन में किसी प्रकार के सुख की आकांक्षा हो, जिन्हें सफ-

लता प्राप्त करनी हो उन्हें सर्वप्रथम चिन्ता-रहित बनने का प्रयत्न करना चाहिये। इससे अपनी शक्ति सुरक्षित रहेगी। बचाई हुई शक्ति किसी भी कार्य में लगाने से वहीं सफलता के दर्शन होने लगते हैं। चिन्ता-रहित जीवन सफलता का स्रोत माना जाता है।

चिन्ताओं से मुक्ति पाने का सरल उपाय यह है कि हमेशा काम करते रहें। दत्तचित्त होकर अपने काम में जुटे रहने से सारा ध्यान काम की सफलता पर चला जाता है। चित्त विविध अनुभवों में उलझा रहता है। जब तक अपना काम भली प्रकार पूरा न हो जाय या जब तक पूर्ण सफलता न मिल जाय तब तक सारी मानसिक चेष्टाओं को उसी में लगाये रहेंगे तो चिन्तायें आप ही दूर भाग जायेंगी। अकर्मण्य बने रहने में ही अनावश्यक सोचने-विचारने का समय निकलता है। कहावत है—"खाली दिमाग शैतान का घर।" कोई काम न होगा तो चिन्तायें आयेंगी, बुरे-बुरे विचार उठेंगे और उनकी प्रतिक्रिया भी शरीर और मन पर होगी ही। इसलिये किसी न किसी काम में हर समय लगे रहना आवश्यक है।

यह देखा जाता है कि लोग बीती हुई घटनाओं की भयङ्कर कल्पना में अपनी शक्ति और समय का दुरुपयोग करते रहते हैं। जो हो चुका वह वापस लौटने का नहीं, फिर उस पर अकारण विलाप करने से क्या फायदा? जो हो गया उसे भूलकर भविष्य के सुखद परिणामों की प्राप्ति के लिये एकाग्र मन से लगे रहना ही श्रेयस्कर होता है। इसी प्रकार आने वाली घटनाओं से सम्पूर्ण करने के लिये उत्साह पैदा कीजिये। देखिये आपकी शक्ति भी कितनी प्रबल है।

हिटलर कहा करता था—अच्छे से अच्छे भविष्य की कल्पना करनी चाहिये और खराब से खराब परिणाम भुगतने के लिये तैयार रहना चाहिये। इससे अकारण उठने वाली चिन्ताओं से छुटकारा मिलता है। एक पहलवान की इच्छा थी कि वह दूसरे को पछाड़ेगा। इस आशा से उसने स्वास्थ्य का निर्माण किया। वर्षों तक दंड-बैठक का अभ्यास किया। अधिकाधिक पौष्टिक आहार जुटाया तब कहीं जाकर दूसरे पहलवान से कुश्ती लड़ने के योग्य

हुआ। फिर भी दांव-पेंच न बन पड़े और कुश्ती में हार गया। इससे यह नहीं माना जा सकता कि उसका श्रम व्यर्थ गया। उसके परिणाम तो सुन्दर, स्वास्थ्य और आरोग्य के रूप में मिले ही। इसके लिये आने वाले प्रत्युत्तर परिणामों के प्रति पहले से साहस पैदा करना चाहिए ताकि बुरे परिणाम की दुश्चिन्ता से बचे रहें। सुखद कल्पना के सत्परिणाम तो आपको मिलेंगे ही उनसे आपको कोई वञ्चित न कर सकेगा।

अकारण चिन्तित रहने का एक कारण यह भी है कि लोग बिना सोचे-समझे किसी बात की पूर्ण सफलता का निर्णय कर लेते हैं। यह निर्णय आपके पक्ष में आये ही इसके लिए श्रम, उद्योग और चतुराई भी अपेक्षित थी। फिर यदि परिस्थितियाँ नहीं बन पड़ीं तो भी अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति में बाधा आ सकती है। विपरीत परिणाम भी उपस्थित हो सकता है। ऐसे समय प्रायः लोग अपना धैर्य खो बैठते हैं और शोक-सन्ताप करके कटे-कटे चिन्ता या पश्चात्ताप करते रहते हैं। बार-बार अपनी असफलता पर ही दुःख होता है इसलिये पहले से ही पूर्ण सफलता का निर्णय कर लेने की भूल न करें वरन् यदि परिस्थितिवश असफलता का सामना करना पड़े तो उसके लिये भी सदैव तैयार रहना चाहिये।

परिस्थितिवश यदि ऐसी कोई विपरीत घटना जीवन में घटित होती है तो आप अपने मित्रों, शुभ-चिन्तकों और समझदार लोगों से इस विषय में विचार-विमर्श कीजिये। इससे सम्भव है आपकी कठिनाइयों का कोई दूसरा हल निकल सके किन्तु यदि यह अच्छी प्रकार समझ लिया गया है कि यह कठिनाई घटती या मिटती दिखाई न पड़े तो भी उद्विग्न मत हूजिये। तब मानसिक शान्ति के लिये उस चिन्ता के विषय से चित्त हटाकर अपना ध्यान किसी दूसरे विषय में लगाने का प्रयत्न करना चाहिये।

किसी के प्रियजन की आकस्मिक मृत्यु हो गई है तो यह संकट ऐसा है जिसे सुधारा नहीं जा सकता है, पर चिन्ता करने के दुष्परिणामों से बचने के लिये कोई ऐसा रचनात्मक उपाय प्रयोग में ला सकते हैं, जिससे शोक का वाता-वरण बदल जाय और चित्त अशान्त रहने की अपेक्षा किसी सन्तोष से रहने

वाले काम में लग जाय। किसी की रुचि धार्मिक कथा-साहित्य में होती है उन्हें गीता, रामायण आदि किसी पुस्तक के स्वाध्याय से अन्तःकरण की तुष्टि करनी चाहिए। जिन्हें प्राकृतिक जीवन प्यारा लगता हो वे ऐसा भी कर सकते हैं कि कुछ दिन तक कहीं तीर्थ यात्रा आदि में समय बितावें। अपनी रुचि के अनुसार अपनी शान्ति प्राप्त करने के प्रयत्न करें तो कोई साधन ऐसे बन जायेंगे। जिससे चिन्ताजनक परिस्थिति में भी अपना मानसिक सन्तुलन बनाये रख सकें।

चिन्ता एक संक्रामक रोग है। जब हम किसी ऐसे व्यक्ति के पास बैठते हैं तो उसकी निराशा के तत्व खींचकर हम भी निरुत्साहित होने लगते हैं। ऐसे लोग सदैव भाग्य को दोष देते रहते हैं। "हम अभागे हैं" हमारा जीवन निरर्थक गया, घर न बनवा सके, जायदाद न खरीद पाये। हम पर परमात्मा नाखुश है आदि निराशाजनक भावनाओं से वे अपना भाग्य तो बिगाड़ते ही हैं अपने सम्पर्क में आने वालों का भविष्य भी अन्धकारमय कर देते हैं।

आप सुन्दर भविष्य की कल्पना कीजिये। अधिक योग्य, धनिकवान, स्वस्थ और आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न बनाने की अनेकों नई-नई योजनायें बनाइए और अपनी परिस्थितियों का उनके साथ मेल होने दीजिये। कोई न कोई योजना जरूर ऐसी आयेगी जो आपके विकास में सहायक बनेगी। महापुरुष ईसा ने कहा है "कल के लिये चिन्ता मत करो, वरन् सुनियोजित प्रयत्न करो ताकि आपका कल अधिक सुनहला हो।" अच्छे चिन्तन से, संग्रहीत सांसारिक अनुभवों के सहारे, अधिक उत्साहपूर्वक कार्य करने की शक्ति जागृत होती है। पश्चात्ताप और आत्मग्लानि की दुश्चिन्ता से कार्यनिष्ठा, साहस, शक्ति, और कुशलता का नाश होता है। आप सदैव इन से बचने का प्रयत्न कीजिए। जीवन के प्रति आशङ्कापूर्ण भावनायें कदापि न करें। सदैव भविष्य के मङ्गलमय होने की कल्पना किया करें। इसी में सुख है, शान्ति है, श्रेय है।

भय का कारण और निवारण

डर का सबसे बड़ा कारण है अज्ञान। जिसे हम ठीक तरह नहीं जानते उससे प्रायः डरा करते हैं। सृष्टि के आरम्भ में आदिम मनुष्य, सूर्य, चन्द्र समुद्र,

बादल, बिजली, नदी, पर्वत, आँधी, आग, सर्प का स्वरूप ठीक तरह समझ न पाया था, इसलिये चेतना विकास के प्रथम चरण में उनकी स्थिति, शक्ति और मर्यादा की समुचित जानकारी न थी, फलस्वरूप उनसे डर लगा। देवता के रूप में उन्हें कल्पित किया गया और अनेक पूजा विधानों से उन्हें सन्तुष्ट करने का प्रयत्न किया गया ताकि वे अपना कोई अहित न करें। मृत्यु के उपरान्त का जीवन अभी भी रहस्यमय है पर पूर्वकाल में और भी रहस्यमय बना हुआ था। इस अज्ञान ने प्रत्येक मृतक को भूत-प्रेत की मान्यता प्रदान करदी और आकस्मिक दुर्घटनाओं, विपत्तियों एवम् बीमारियों का मूल कारण विदित न होने से उन्हें भूत की करतूत समझ लिया गया। प्रायः ऐतिहासिक काल में मनुष्य का मनोभूमि का अधिकांश भाग इन देवताओं और भूतों का सन्तोष समाधान करने में व्यतीत होता था।

ज्ञान का जैसे-जैसे विकास हुआ वे भय छूट गये। बीमार होते ही भूत को बलि चढ़ाने की तैयारी ही जिनके मस्तिष्क में एकमात्र उपाय सूझता हो ऐसे लोग अब बहुत थोड़े हैं, वे सभ्य समाज में उपहासास्पद माने जाते हैं।-इसी प्रकार अलग-अलग सत्ता वाले, एक दूसरे से लड़ने झगड़ने और ईर्ष्या, द्वेष करने वाले देवताओं के स्थान पर अब इन्हें एक ही ईश्वरीय शक्ति के विभिन्न नाम माना जाने लगा है। ग्रह-नक्षत्रों की, विद्या की सही जानकारी जैसे,जैसे बढ़ रही है वैसे-वैसे शनि और की राहु अनिष्टकर ग्रह दशा का आतंक समाप्त होता चला जा रहा है।

अधिकांश भय अवास्तविक होते हैं। साँप से लोग आमतौर से डरा करते हैं पर सही बात यह है कि केवल सतरह प्रतिशत साँप ही ऐसे होते हैं जिनमें मारक विष रहता है। यह वास्तविकता जिन्हें विदित होती है, जो साँपों के स्वभाव की गहरी जानकारी रखते हैं वे उनसे जरा भी नहीं डरते वरन् कई बार तो उनसे अपना मनोरंजन लाभ भी करते हैं। सरकस कर्मचारी खूँखार जानवरों के बारे में अधिक जानकारी होने के कारण उनसे डरना तो दूर उलटा अचरज भरे काम कराते रहते हैं। घने जङ्गलों में सिंह व्याघ्रों के बीच निवास करने वाले आदिवासी उनसे जरा भी नहीं डरते।बल्कि आँख-

मिचौनी खेलते रहते हैं जब कि सामान्य लोगों को सिंह, व्याघ्र की बात सुनने से भी डर लगने लगता है।

अजनबी आदमी को देखकर तरह-तरह की आशङ्कायें मन में उठती हैं पर जब उसका पूरा परिचय हो जाता है तो पूर्व आशङ्का मित्रता में बदल जाती है। अँधेरे में जाते समय डर केवल इसलिये लगता है कि वहाँ क्या कुछ होगा इसकी जानकारी न होने से चित्त में अनेक तरह की डरावनी बातें उठती हैं। नदी में थोड़ा पानी होने पर भी अनजान आदमी उसमें प्रवेश करते हुए दुर्घटना से सशङ्कित रहता है। सही जानकारी होने पर डर सहज ही दूर होता है। प्रकाश में तो सुनसान में जाते हुए और नदी के उथले पानी का सही पता लगाते हुए उसमें प्रवेश करते हुए किसी को कोई झिझक या भय महसूस नहीं होता।

इस संसार में लगभग सारे डर अज्ञानमूलक हैं। हानि, बाधा, दुर्घटना, असफलता, आक्रमण, दुर्भिक्ष, ग्रह-दशा, भूत आदि की आशङ्का से जितना डरा जाता है वस्तुतः उसका सौवाँ भाग भी वास्तविक नहीं होता। अज्ञान ही कायरता या भीरुता का रूप धारण कर मनुष्य को भयभीत करता रहता है। जिसे जितना आत्मिक ज्ञान है वह उतना ही निर्भय रहेगा। तत्त्वज्ञानी की पहिचान यह है कि वह पूर्णतया निर्भय हो। ज्ञान की उपासना को अध्यात्म मार्ग का प्रथम सोपान इसलिये माना गया है कि उसके आधार पर मनुष्य सब प्रकार के भय और संशयों से छुटकारा पाकर अभीष्ट लक्ष्य की ओर अपनी मानसिक शक्तियों को लगा सकने में समर्थ होता है। वह अज्ञानी जिसे अनेक प्रकार के भय सताते रहते हैं अपनी मानसिक क्षमता का अधिकांश भाग उन्हीं गोरख-धन्धे में को बैठता है फिर आत्म-कल्याण जैसे श्रेष्ठ कार्य के लिये उसके पास मनोबल बचेगा ही कैसे ?

ज्ञान का प्रकाश उत्पन्न होने से मनुष्य संसार की हर वस्तु का स्वरूप समझ जाता है, तब उसे उनमें डरने लायक कुछ भी कारण दिखाई नहीं पड़ता। निर्भीक लोग उस परिस्थितियों में भी हँसते, प्रसन्नचित्त रहते और मानसिक सन्तुलन बनाये रहते देखे जाते हैं जिनमें कि साधारण अधीर

आशङ्काओं और कुकल्पनाओं से भयभीत होकर किंकर्तव्यविमूढ़ बन जाते हैं। संसार के महापुरुष एवं राजनेता अगणित महत्वपूर्ण उत्तरदायित्वों और अशुभ संभावनाओं से घिरे रहते हैं। समस्याओं का हल वे सोचते हैं और जो संभव है वह करते हैं पर यह होता तभी है जब मानसिक संतुलन को सही रखने की, उत्तेजित न होने की क्षमता विद्यमान हो। श्रेष्ठ और निकृष्ट व्यक्तियों में धैर्य और अधीरता का ही अन्तर रहता है। जिसने इस संसार को एक नाटकमात्र समझ लिया है वह अपना सर्वोत्कृष्ट अभिनय करने मात्र का ध्यान रखता है। जैसी परिस्थितियाँ आती हैं उनके अनुरूप परिवर्तन करने और ढलने की क्षमता जिसने सम्पादित करली वे संसार में समस्त परिवर्तनों को एक क्रीड़ा कौतुकमात्र समझते हैं। डरना उन्हें मानवीय दुर्बलता और अज्ञान का एक उपहासास्पद कारण प्रतीत होता है। जो डरते हैं वे कर कुछ नहीं पाते। डर के मारे अध-मरे बने रहने वाले, आशङ्काओं और शंकाओं से उद्विग्न रहने वाले व्यक्ति का अर्ध मूर्छित, अर्ध मृतक स्थितियों में पड़े हुए निकृष्ट और असफल जीवन ही किसी प्रकार पूरा करते हैं।

जिसे अपनी शक्ति का सही ज्ञान होता है वह उतने बड़े कदम उठाता है जो अपनी सामर्थ्य और मर्यादा के अन्तर्गत हो। शेखचिल्ली इसलिये असफल हुआ कि वह अपनी अर्थ व्यवस्था के क्रमिक विकास और योजनाओं की पूर्ति में लगने वाले समय और श्रम के बारे में भ्रम-ग्रस्त बना रहा। किस सफलता के लिये कितनी तैयारी, मेहनत और प्रतिक्षा करनी पड़ेगी यह जान-कर कोई व्यक्ति अपनी गतिविधियों को निर्धारित करे तो उसे कदाचित् ही कभी असफलता का मुँह देखना पड़े।

बड़े से बड़ा भय मृत्यु का होता है पर यदि उसे वस्त्र परिवर्तन जैसी जीव के लिये भूतकाल में करोड़ों बार घटित हुई एक सामान्य प्रक्रिया मान लिया जाय तो मरने का अवसर आने पर भी मनुष्य अपना साहस बनाये रह सकता है। मृत्यु के सम्मुख में देर तक लड़ सकता है। कम से कम शान्त चित्त से ईश्वर का नाम लेते हुए तो मर ही सकता है। मृत्यु का स्वरूप ठीक तरह समझ में न आने से ही त्रास मिलता है अन्यथा मृत्युदण्ड की आज्ञा सुनकर

फाँसी लगने के दिन तक खुशी से सतेरह से अठारह पौंड वजन बढ़ा लेने वाले क्रान्तिकारियों के उदाहरण सुनने को मिलते हैं ?

उचित अनुचित का विवेक जागृत होने पर भी मनुष्य निश्चिन्त हो सकता है । उसके सामने लक्ष्य और मार्ग स्पष्ट रहने से न तो उलझनें रहती हैं और न परेशानी । हवा में उड़ते हुए पत्ते की तरह जो चारों ओर मन डुलाता है उसे सफलता असफलता का भय बना रहता है । सच्ची निर्भयता उसे ही मिलती है जिसके सामने अपना कर्तव्य ही प्रधान है । परिणाम को अधिक महत्व देने वाला व्यक्ति असफलता को न तो अधिक महत्व देता है और न उससे डरता है ।

ईश्वर-विश्वास निर्भयता का सर्वोपरि उपाय है । पुलिस गारद के पहरे में रहने वाले को जब आक्रमणकारी शत्रुओं से निश्चिन्तता मिल जाती है, सुरक्षा अनुभव होती है जो सर्वशक्तिमान् परमात्मा को अपना साथी-सहचर बना लेने वाले के लिए डरने की गुन्जाइश कहाँ रह जाती है । जिसने धर्म को अपना आधार बना लिया उसका भविष्य अन्धकारमय हो ही नहीं सकता फिर किसी से भी डरने की ऐसे व्यक्ति के लिये बात ही क्या रह जाती है ।

हम किसी से क्यों डरें

परमात्मा ने अनेक विभूतियों से सुसज्जित कर मनुष्य को इस धरती में भेजा है । जिन मङ्गलकारी उपहारों का लेकर वह इस वसुन्धरा में अवतीर्ण होता है वे इतने हैं कि एक-एक की खोज और गणना करने बैठें तो अतुल श्रम व समय लगाना पड़े । भावनाओं को व्यक्त करने के लिये जैसी बुद्धि व वाणी इसे मिली है, संसार के किसी अन्य जीव-जन्तु को उपलब्ध नहीं । संसार की सारी मशीनें एक ही शरीर के सम्मुख तुच्छ हैं । खाने-पीने, चलने फिरने को स्वचालित मशीन और कोई भी नहीं, जैसी मनुष्य को प्राप्त है । पारस्परिक प्रेम और स्नेह, त्याग और आत्मोत्सर्ग सौजन्य और सौहार्द, सज्जनता और सहानुभूति के बल पर वह चाहे तो इसी धरती पर स्वर्ग उतार कर रख दें । इससे भी बढ़-

कर अणुव्रत अनुपम वस्तु उसे मिली है। यह है आत्मिक बल की अनुपम सम्पदा। इसे प्राप्त कर मनुष्य सचमुच देवता बन जाता है।

किन्तु कार्य-जगत् में जब हम इन उपहारों में से एक को भी अधिकतर जीवनों में फलित होते नहीं देखते तो बड़ा आश्चर्य होता है। इन महत्त्वपूर्ण अनुदानों का स्वामी होकर भी उसकी दीनता, हीनता देखकर बड़ी निराशा होती है। लगता है उसने इनका दुरुपयोग कर लिया। बजाय सुखी व समुन्नत जीवन बिताने के बेचारा क्लेश और क्लान्त परिस्थितियों में पड़ा किसी प्रकार जीवन के दिन पूरे करता रहता है। इसका एक प्रबल कारण है भय। भय से बढ़कर अनिष्टकारी दूसरा कोई मनोविकार नहीं। यह ऐसा महान् घातक शत्रु है, जो व्यक्ति की विकास-विजय को पराजय में, आशा को निराशा में, उन्नति को अवनति में क्षणभर में बदल कर रख देता है।

भय के दो रूप हैं एक क्रियात्मक, दूसरा भावनात्मक। पहला वस्तु और परिस्थिति के स्थूल संयोग व सम्पर्क की आशङ्का से होता है। रात के अन्धकार में डर जाना। चोर, बदमाश आदि किसी आततायी के आक्रमण आदि की आशङ्का को इस कोटि में माना जाता है। इससे शारीरिक, आर्थिक व व्यावसायिक क्षति सम्भव है। किन्तु दूसरी प्रकार का भय जो मनुष्य को देर तक उत्पीड़ित करता, सताता रहता है वह है मन का भय। इसके पीछे भी आधार क्रियात्मक हो सकते हैं किन्तु ऐसे भय अधिकांश निराधार ही होते हैं। पहले से उतना नुकसान नहीं होता; क्योंकि वे घटना के अनन्तर ही समाप्त हो जाते हैं। किन्तु निरन्तर शारीरिक व मानसिक शक्तियों का शोषण करने वाला तो यह मन का भय ही होता है।

भयभीत होने का अर्थ है—आत्म-बल की कमी, आत्म-विश्वास की न्यूनता। आने वाली कठिनाई या दुर्घटना से आतङ्कित होने का एक ही अर्थ होता है कि उससे लड़ने-जूझने और संघर्ष करने का साहस नहीं है। यह मनुष्य का एक बड़ा दुर्गुण है, कि वह बिना जाने-पहचाने केवल कागजी कंस से—कपोल कल्पित मान्यताओं से—भयभीत रहे। भय की परिस्थिति के मूल तक पहुँचकर देखें तो वास्तविकता कुछ भी न निकलेगी। मानसिक दुर्बलताओं

के अतिरिक्त भय का और कोई कारण नहीं। यदि कुछ हो भी तो उसे अपने सुदृढ़ मनोबल के द्वारा, विवेक और बुद्धि के माध्यम से सुलझाया जाना सम्भव है।

एक आदमी अंधेरे में पाँव धरता है तो आगे भूत खड़ा दिखाई देता है। बेचारा डर जाता है। होंठ सूख जाते हैं, छाती धड़कने लगती है। वैर्य छूटा कि भूत सवार हुआ। फिर जैसी कल्पना करते जाते हैं, भूत वैसी ही क्रियायें करने लगता है। पर एक दूसरा व्यक्ति थोड़ी हिम्मत बांधता है सारा साहस बटोर कर आगे बढ़ता है, सोचता है देखें यह भूत भी क्या बला है? आगे बढ़ता है तो हवा के कारण हिलती-डुलती झाड़ी के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई नहीं देता है। तब उसे पता चल जाता है भूत और कुछ नहीं अपना ही मानस-पुत्र है, अपनी ही कल्पना की तस्वीर है। डर जाने के अस्सी फीसदी कारण ऐसे ही होते हैं। कई बार ऐसे समय आ सकते हैं, जब कोई हिंसक जीव या आततायी पुरुष द्वारा ऐसी घटना उपस्थित हो। पर यदि वहाँ भी मनुष्य साहस और शौर्य से काम ले तो उन्हें भी पार कर सकता है। कहावत है—"हिम्मते मरदाँ मददे खुदा।" अनेक ऐसी घटनायें घटित हुई हैं, जब छोटे-छोटे बालकों ने खूंख्वार हिंसक जानवरों का मुकाबला करके उनसे अपनी आत्मरक्षा की है। भयभीत होने का तो एक ही अर्थ है—अपने प्रतिद्वन्द्वी के आक्रमण के सामने सिर झुका देना। डर जाना जान-बूझ कर अपने आपको आपत्तियों के जाल में फँसा देना है।

छोटे-छोटे जीव-जन्तु, पशु-पक्षी घोर जङ्गलों में भी निर्भय विचरण करते रहते हैं। अनेक भयानक परिस्थितियाँ होते हुए भी उन्हें इस तरह निर्भीक घूमते देखते हैं तो मनुष्य की क्षमता पर, शारीरिक व मानसिक शक्ति पर सन्देह होने लगता है।

भय मनुष्य की योग्यता कुण्ठित कर देने का प्रमुख कारण है। मानवीय योग्यताओं को देखते हुए यह आशा की जाती है कि लोग दिन प्रतिदिन उन्नति की ओर, विकास की ओर बढ़ते चले जायें। आज जिस स्थिति में हैं कल उससे बेहतर स्थिति में हों। आज की अपेक्षा कल कुछ अधिक धनवान्, बलवान्,

गुणी एवं शिक्षित हों। किन्तु इस तरह भयभीत रह कर अपनी विकास-गति को शिथिल एवं लुञ्ज-पुञ्ज कर डालने की बात उपहासास्पद-सी लगती है। यह सब इसलिये होता है कि आने वाली घटनाओं तथा परिस्थितियों को बहुत बढ़ा-चढ़ाकर देखते हैं और अपनी शक्तियों को उनसे कमजोर मानते हैं। इससे पराक्रम तथा कर्त्तव्य-निष्ठा का ह्रास होता है। जिस कर्म के किए जाने की यथार्थ आवश्यकता थी वह नहीं हो पाता। कई बार तो उसके स्थान पर अनुचित कार्य तक होते देखे जाते हैं। डरपोक मन, कायरता और शङ्कित रहने की विनाशक वृत्तियों के रहते कोई महत्त्वपूर्ण कार्य पूरा कर पाने में समर्थ नहीं हो सकता। सफलता प्राप्त करनी हो तो भय रहित होकर उस कार्य में जुटना पड़ेगा अन्यथा मानसिक चेष्टाओं में वह एकाग्रता, लगन एवम् तत्परता न बन पड़ेगी जिसकी कार्य-पूर्ति के लिये आवश्यकता अनुभव की गई थी। छिन्न-भिन्न एवम् दुर्बल मनोबल से कोई कार्य पूरे नहीं होते। इसलिये पहले साहस का अनुसरण करना होता है।

भय सफलता का सबसे बड़ा बाधक है। साहसी और हिम्मतवर व्यक्ति हजार कठिनाइयों में भी विचलित नहीं होते। जीवन के किसी भी क्षेत्र में व्यवस्था एवम् क्रम बनाये रखने के लिये सुदृढ़ मनोबल एवम् साहसी होने की अत्यन्त आवश्यकता है। इनके अभाव में पग-पग पर भय उत्पादक परिस्थितियाँ रास्ता रोकतीं और पीछे लौटने को मजबूर कर देती हैं। विकास की गाड़ी रुके नहीं—सफलता की मञ्जिल तक पहुँचने में सन्देह न रहे—इसके लिये भय-भीरुता को छोड़ना पड़ेगा। परिस्थितियों से सङ्घर्ष करने की हिम्मत करनी पड़ेगी। तभी किसी महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष तक पहुँचना सम्भव हो सकेगा।

सुखी न भयउँ 'अभय' की नाईं

घर में प्रचुर सम्पत्ति है। सुन्दर मकान, आज्ञाकारिणी स्त्री, स्वामिभक्त सेवक, सज्जन परिवार—सभी कुछ है। शरीर भी पूर्ण स्वस्थ और बलिष्ठ है, पर जिस जीवन में सदैव भय और आतङ्क छाया रहता है उसे कभी सुखी न कहेंगे। भय संसार में सबसे बड़ा दुःख है। जिन्हें संसार में रहते हुए सुखों की

परिस्थितियों का भय नहीं हो, तो वे भी मृत्यु की कल्पना से काँप उठती हैं। इसलिये यह निश्चित ठहरता है कि अभय होने के सदृश सुख इस संसार में नहीं है। भय-विमुक्त होना मनुष्य का सबसे बड़ा सौभाग्य है।

भय के लिये कारण निर्दिष्ट होना जरूरी नहीं है। मानसिक कमजोरी, दुःख या हानि की काल्पनिक आशङ्का से ही प्रायः लोग भयभीत रहते हैं। सही कारण तो बहुत थोड़े होते हैं। कोई सह-कर्मचारी इतना कह दे कि आप नौकरी से निकाल दिये जायेंगे, इतने ही से आप डरने लगते हैं। कोई मूर्ख पण्डित कह दे कि अमुक नक्षत्र में अतिवृष्टि योग है, बस फसल नष्ट होने की आशङ्का से किसानों का दम फूलने लगता है। नौकरी छूट ही जायगी या जल गिरेगा ही यह बात यद्यपि निराधार है, केवल अपनी कल्पना में ऐसा सत्य मान लिया है, इसी के कारण भयभीत होते हैं। इस अवास्तविक भय का कारण मनुष्य की मानसिक कमजोरी है, इसका निराकरण भी सम्भव है। मनुष्य इसे मिटा भी सकता है।

परिस्थितियों या आशंकाओं के विरुद्ध मोर्चा लेने की शक्ति हो तो भय मिट सकता है। इसके लिये हृदय में दृढ़ता और साहस चाहिये। १८१२ ई० में जब अँग्रेजों और अमरीकनों में युद्ध चल रहा था तो 'सोचिवे भास' नामक बस्ती के पास समुद्र में अँग्रेजों का जहाज दिखाई दिया। उसमें से कुछ सिपाही छोटी-छोटी किश्तियों में बैठकर बस्ती की ओर बढ़ने लगे। यह लोग गाँव को जला देंगे और हमें मार डालेंगे, इस भय से ग्रामवासी अपने-अपने हथियार रखते हुए भी पहाड़ियों के पीछे छिप गये। बारहवर्षीय लड़की से यह कायरपन सहन न हुआ, वह अकेली युद्ध भी नहीं कर सकती थी। वह कहीं से ढोल उठा लाई और एक जगह छुपकर उसे जोर-जोर से पीटने लगी। उसकी योजना सच निकली। छुपे हुए ग्रामवासियों ने समझा हमारे सिपाही आ गये हैं अतः निकल कर अँग्रेजों पर हमला कर दिया। अँग्रेज डरकर भाग गये। साहस ही वस्तुतः भय को पराजित करता है। इसके लिये मानसिक कमजोरियों का परित्याग होना चाहिये। परिस्थिति से घबरा जाने के कारण ही लोगों को हानि उठानी पड़ती है।

अनहोनी बात की कल्पना यदि आपके मस्तिष्क में आती है तो उसका एक भययुक्त चित्र अपने आप में दिखाई देने लगता है, इसी से डर जाते हैं। ऐसे अवसर आने पर वस्तु स्थिति का निराकरण तत्काल कर लेना चाहिये, क्योंकि जब तक यह कल्पना आपके मस्तिष्क में बनी रहेगी तब तक आप कोई दूसरा काम भी न कर सकेंगे। अँधेरी रात में घर में सोये हैं, ऐसी शंका होती है कि छत पर कोई है। "चोर ही होगा" यह कल्पना अधिक दृढ़ हो जाती है। तब आपकी हिम्मत छूट जाती है और डर जाते हैं। थोड़ा साहस कीजिये और उठिये, चाहें तो हाथ में लाठी उठा लीजिये। ऊपर तक हो आइये व परेशानी दूर हो जायगी, चोर ही हुआ तो वह आपकी आहट पाते ही भागेगा। आपकी सम्पत्ति भी बच जायेगी और भय की दशा भी दूर हो जायगी। काल्पनिक भय या आशंकाजन्य भय तत्काल निराकरण से ही दूर हो जाता है।

आध्यात्मिक दृष्टि से विचार करें तो यह निष्कर्ष निकलता है—"द्वितीयाद् भयं भवति।" अर्थात् परमात्मा को भूलकर अन्य वस्तुओं के साथ लगाव रखने के कारण ही भय होता है। मनुष्य अपने शाश्वत-स्वरूप को विस्मृत करके शरीर और उसके हितों के प्रति जितना अधिक आसक्त होता है, उसे दुःख और मृत्यु की आशंका उतना ही भयाकुल बनाती है। हममें से ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं है, जो शरीर की नश्वरता और मृत्यु की असंदिग्ध सम्भावना को स्वीकार न करता हो। यह एक तथ्य है, जो मनुष्य को शिक्षा देना चाहता है कि वह शरीर से भिन्न कोई अविनाशी तत्त्व है। जन्म और मरण के नित्य-कर्मों से यह स्पष्ट भी हो जाता है कि मनुष्य आध्यात्मिक दृष्टि से अविनाशी तत्त्व है। अतः उसे मृत्यु-भय से कदापि विचलित नहीं रहना चाहिये।

शरीर आपका साधन मात्र है। यह आपके कल्याण और सांसारिक सुखोपभोग के लिये मिला है। किन्तु सच्चा सुख आपको तभी मिलेगा जब आपको अपनी आत्म-शक्ति की पहचान हो जायगी।

मुद्रक—युग निर्माण प्रेस, गायत्री तपोभूमि, मथुरा